RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल-011/2018-20

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 45, अंक : 44 एक प्रति 2 : रुपये
कुल पृष्ठ : 8
रविवार 2 फरवरी, 2020
विक्रमी सम्वत् 2076, सृष्टि सम्वत् 1960853120
दयानन्दाब्द : 195 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये
आजीवन शुल्क : 1000 रुपये
दूरभाष : 0181-2292926, 5062726
E-mail: apspunjab2010@gmail.com,
www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष-45, अंक : 44, 30 जनवरी-2 फरवरी 2020 तदनुसार 20 माघ, सम्वत् 2076 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

आधिव्याधिभि: परीतोस्मि (विचारों के प्रहारों से सविकार हूँ)

लेo-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः।
नि बाधते अमतिर्नग्नता जसुर्वेर्न वेवीयते मतिः।।
मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो।
सकृत्सु नो मघवन्निन्द्र मृळयाधा पितेव नो भव।।
-ऋ० १०।३३।२-३

शब्दार्थ-**सपत्नीः+इव**= सौकिनों के समान **पर्शवः**= आत्मा को स्पर्श करने वाले कुत्सित-भाव **अभितः**= सब ओर से **माम्**= मुझे **सं+तपन्ति**= बहुत तपा रहे हैं, सता रहे हैं। मुझे **अमितः**= अज्ञान **नि+बाधते**= बहुत दुःख देता है। **नग्नता**= नङ्गापन तथा **जसुः**= हिंसा के भाव मुझको सता रहे हैं। **वेः+मतिः+न**= पक्षी की मति के समान मेरी मति **वेवीयते**= अत्यन्त चञ्चल हो रही है। **शतक्रतो**= अनन्तक्रियाशक्तिसम्पन्न भगवन्! **न**= जिस प्रकार **मूषः**= चूहे **शिश्नाः**= माँड लगे सूत की तारों को खा जाते हैं, उसी प्रकार **मा**= मुझ **ते**= तेरे **स्तोतारम्**= स्तोता को **आध्यः**= आधियाँ, मानसिक चिन्ताएँ **वि+अदन्ति**= खा रही हैं। हे **मघवन्**= पूजितधनवन्! हे **इन्द्र**= परमेश्वर! **सकृत्**= एक बार तो **नः**= हम पर, **सु+मृळय**= भली प्रकार दया कर। **अध**= और **नः**= हम पर, हमारे **पिता+इव**= पिता की भाँति **भव**= हो

व्याख्या-मनुष्य को मानसिक विचार किस प्रकार सताते हैं, इसका अतीव मनोहारी चित्र इन दो मन्त्रों में खींचा गया है। इनका मनन कीजिए और मन की अवस्था से इसकी तुलना कीजिए। इस मन्त्र में व्यंग्य से अनेक विवाह का निषेध किया गया है। मानसिक दुःख का मूल है अज्ञान, अतः वेद ने सबसे पूर्व **अमतिः**= अज्ञान का नाम लिया है। साधारण मनुष्य प्रत्यक्षवादी होता है, उसे अपने शरीर से परे कुछ नहीं सूझता, अतः **नग्नता**= नङ्गापन भी दुःखदायी है। हिंसा का भय, भूख-प्यास से मरने का भय भी उसे भीत करता रहता है। इन सब दुःखों के कारण उसकी मति ठिकाने नहीं रहती, भयभीत पक्षी की भाँति काँपती रहती है। दुःखी होकर भगवान् को उपालम्भ देता है कि **'व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं शतक्रतो'**= अनेकों के कार्य सँवारने वाले! मैं तेरा भक्त हूँ, फिर भी मुझे मानस-विचार सता रहे हैं, खाये जा रहे हैं। वेद में दूसरे स्थान पर भगवान् के प्रति इससे भी तीव्र उपालम्भ है-

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्। स्तोता मे गोषखा स्यात्।।
शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे। यदहं गोपतिः स्याम्।।
-ऋ० ८।१४।१-२

हे परमेश्वर! यदि मैं तेरी भाँति सारे धन का अकेला ही स्वामी होता, तो मेरा स्तोता गोमित्र होता [अर्थात् उसे धनधान्य, ज्ञान की त्रुटि न रहती, इन्द्रियाँ उससे द्रोह न करतीं]। हे इन्द्र! यदि मैं गोपति [पृथिवीपति, वाक्पति, ज्ञानपति] होता, तो मैं इस ज्ञानी, बुद्धिमान् को सिखाता और देना चाहता। प्रभो! तू कैसा है? मैं तेरा भक्त और मानस विचारों से तथा भूख-प्यास से पीड़ित! हा! हन्त!!

कितना मीठा उपालम्भ है! कितनी गहरी वेदना है!

प्रभो! बहुत हो चुकी-**'सकृत्सु मघवन्निन्द्र मृळय'**= एक बार ही भगवन्! परमेश्वर! कृपा कर। तू हमारा पिता है-**'पितेव नो भव'**= पिता की भाँति ही हो। क्या पिता पुत्र को बाधित, पीड़ित, त्रस्त देखकर शान्त रह सकता है? प्रभो! एक बार तेरी दया प्राप्त हो जाए, तो हमारा उद्धार हो जाए। दया कर-**'सकृत् सुमृळय'**, और **'पितेव नो भव'** और बस।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

वर्ष 2020 के नए कैलेण्डर मंगवाए

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.), चौक किशनपुरा जालन्धर द्वारा प्रति वर्ष हजारों की संख्या में नव वर्ष के कैलेण्डर महर्षि दयानन्द के चित्र के साथ देसी तिथियों सहित छपवाए जाते हैं। गत कई वर्षों से आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) वैदिक साहित्य आधे मूल्य पर आर्य जनता को उपलब्ध करवा रही है। इसी प्रकार सन् 2020 के महर्षि दयानन्द सरस्वती के चित्र वाले कैलेण्डर भी आधे मूल्य पर आर्य जनता को दिए जाएंगे। पिछले वर्ष की भान्ति इस वर्ष भी कैलेण्डर का मूल्य छह रुपये प्रति तथा 600 रुपए सैकड़ा रखा गया है। इसलिये सभी आर्य समाजें, शिक्षण संस्थाएं व आर्य बन्धु शीघ्र अति शीघ्र कैलेण्डर सभा कार्यालय से मंगवा कर अपने सदस्यों व इष्ट मित्रों में वितरित करें। कार्यालय का समय प्रातः 10.00 बजे से सायं 5.00 बजे तक है। रविवार को अवकाश रहता है इसलिये समय पर अपना व्यक्ति भेज कर कैलेण्डर मंगवाएं।

प्रेम भारद्वाज
सभा महामंत्री

वेद एवं विज्ञान में आकाश समय निरन्तरता

ले.-शिवनारायण उपाध्याय 73, शास्त्री नगर, दादाबाड़ी, कोटा

उच्च ऊर्जा भौतिकी के वैज्ञानिक डॉ. फ्रिट जॉफ कापरा अपनी प्रसिद्ध पुस्तक द ताऊ ऑफ फिजिक्स में लिखते हैं कि पश्चिमी दर्शन वर्तमान भौतिकी के साथ मेल नहीं खाता है इसके विपरीत पूर्वी दर्शन की मान्यताएं वर्तमान भौतिकी की खोज के परिणामों के अनुकूल ही नहीं वरन् उससे भी आगे है। उसका मानना है कि वर्तमान भौतिकी ने पूर्वी रहस्यवाद के आधार भूत विचार को बड़े ही नाटकीय ढंग से मान्यता दे दी है।

विचार है कि प्रकृति का वर्णन करते समय हम जो भी मान्यताएं काम में लेते हैं वे सब एक सीमा के अन्दर ही सत्य हैं वे शाश्वत सत्य की द्योतक नहीं है। वे हमारे मस्तिष्क की उपज है, नक्शे का भाग है राज्य नहीं है। हम जब कभी अपने मस्तिष्क में अनुभव का दायरा बढ़ाते हैं तब हमें सत्य को प्रकट करने वाले मस्तिष्क की सीमायें स्पष्ट हो जाती है। फिर हमें अपनी कुछ मान्यताएं छोड़नी अथवा संशोधित करनी पड़ती है। फिर आकाश और समय के विषय में हमारे विचार वास्तविकता के नक्शे पर स्पष्ट होने लगते हैं। भौतिक विज्ञान में कोई भी नियम ऐसा नहीं है जो अपने बनने में आकाश एवं समय की आवश्यकता को नहीं स्वीकार करता है। आश्चर्यजनक बात यह है कि ऋ 1.95.8 में भी इस तथ्य को इस प्रकार रखा है- मनुष्यों को जानना चाहिए कि काल के लगे बिना कोई कार्य स्वरूप उत्पन्न होकर नष्ट हो जाये यह तो कभी होता ही नहीं है फिर आकाश तो समय के साथ जुड़ा होता ही है। आकाश तो सर्वत्र है और उसी में सबकी स्थिति है।

शास्त्रीय भौतिकी के अनुसार त्रिविमीय आकाश उन वस्तुओं से जो उसमें हैं स्वतंत्र हैं। रेखा गणित का उसमें बड़ा महत्व था। इसके अनुसार समय अपने आप में पूर्ण है, लगातार बहाव में है और भौतिक संसार में अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है। यूनानी विचारधारा में भी रेखा गणित को स्वाभाविक माना गया है। इसमें स्वयं सिद्ध मान्यताओं से तर्क द्वारा साध्य तक पहुंचा जा सकता है। इसलिए रेखा गणित बुद्धिमत्ता पूर्ण कार्यों में केन्द्रीय स्थान रखती थी। प्लेटों के विद्यालय के द्वार पर ही अंकित था-'यदि आम रेखा गणित नहीं जानते हैं तो यहां आप का प्रवेश निषिद्ध है। उनके अनुसार सम्पूर्ण व सृष्टि रेखा गणित के आकार में थी। यह मान्यता सापेक्षता सिद्धान्त तब बनी रही।

आइन्सटीन ने बताया कि रेखा गणित प्रकृति में स्वाभाविक नहीं है। यह तो मस्तिष्क द्वारा प्रकृति पर थोपी गई है। हेनरी मारगेना के शब्दों में सापेक्षता वाद की केन्द्रीय मान्यता है कि रेखा गणित बुद्धि की उपज है। जब इस खोज को स्वीकार किया गया तभी मस्तिष्क आकाश और समय के विचार से अपने अंदर स्वतंत्र सोच उत्पन्न कर सका। पूर्वी दर्शन में सदैव इस विचार को मान्यता मिली है कि आकाश और समय मस्तिष्क की उपज है। वैदिक वाङ्मय में भी आकाश को शून्य माना गया है। ऋ. 1.168.6 में कहा गया है कि जिसमें यह भूगोल (आकाशीय पिण्ड) आदि जगत आता जाता और कम्पन्न करता है, उसी को आकाश जानो। वैशेषिक दर्शन में आकाश की परिभाषा है व शून्य पदार्थ जिसमें आना जाना होता है। वहां आकाश को शब्दों का समुद्र भी कहा गया है क्योंकि जो कुछ बोला जाता है वह आकाश में संचित रहता है। इसी गुण को आधार बनाकर आकाशवाणी तथा टी.वी. आदि कार्य करते हैं। वैदिक वाङ्मय में रेखागणित को वह स्थान नहीं दिया गया है जो यूनान में दिया गया था परन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि वैदिक ऋषियों को रेखा गणित का ज्ञान नहीं था। वे बड़े-बड़े भवन बनाते समय इसका उपयोग करते थे। वे जमीन नापने और आकाशीय पिण्डों की आकृति बनाने में भी रेखा गणित का उपयोग करते थे। सापेक्षतावाद ने स्पष्ट बता दिया है कि आकाश त्रिविमीय नहीं है और समय अलग से महत्व रखने वाला नहीं है। ये दोनों एक दूसरे से बड़ी मजबूती से तथा कभी अलग न होने वाली स्थिति से संयुक्त है और चतुर्विमीय आकृति बनाते हैं। इसे आकाश समय निरन्तरता कहा जाता है।

ऋग्वेद 1.124.5 में भी इस विचार धारा का समर्थन करते हुए कहा गया है कि प्रभात वेला का सूर्यमण्डल का प्रकाश भूगोल के आधे भाग में सब कहीं प्रकाश करता है और दूसरे आधे भाग में रात्रि रही है। दिन और रात्रि के मध्य प्रभात वेला विराजमान है। ऐसे रात्रि प्रभात वेला और दिन निरन्तर क्रम से विद्यमान है। यहां पर यह ध्यान रखना चाहिए कि पृथ्वी का सम्पूर्ण आधा भाग एक साथ सूर्य के सामने नहीं आता है। इसलिए सभी स्थान पर एक साथ एक समय नहीं हो सकता है। प्रत्येक देशान्तर के मध्य चार मिनट का अन्तर होता है। पृथ्वी अपनी कीली पर घूमते हुए चौबीस घंटे में अपना पूरा चक्कर लगा लेती है। चूंकि पृथ्वी को 360० देशान्तरों में विभक्त किया गया है इसलिए एक देशान्तर के बाद दूसरे देशान्तर का आकाश सूर्य के सामने 24×60/360= 4 मिनट बाद आयेगा। इसलिए पृथ्वी पर सब जगह एक समय नहीं हो सकता। फिर इसी विषय को विस्तार देते हुए ऋ. 1.95.1 में कहा गया है कि दिन रात कभी निवृत नहीं होते किन्तु सर्वदा बने रहते हैं अर्थात् एक देश में नहीं तो दूसरे देश में रहे हैं इन मन्त्रों से यह भी सिद्ध हो गया कि आकाश और समय एक दूसरे से कभी अलग न होने वाली स्थिति में संयुक्त है और यही सापेक्षता की मान्यता है। मिन्कोवस्की ने सन् 1907 में ही इसे इन शब्दों में व्यक्त किया था-मेरे जो विचार आकाश-समय के सन्दर्भ में है वे मैं आपके सामने रखना चाहता हूं। ये विचार प्रायोगिक भौतिकी की मिट्टी से निकले हैं और उसी में उनकी शक्ति निहित है वे पूर्ण है। इसलिए आकाश (स्थान) अपने आप में अथवा समय अपने आप में मात्र परछाई में नष्ट हो जाने को अभिशप्त है और केवल उन दोनों का संयोग ही अपने आपको स्वतंत्र वास्तविकता के रूप में बता सकेगा।

आकाश और समय के बीच की कड़ी को नभ विज्ञान में एक अलग सन्दर्भ में जाना जाता है। नभ वैज्ञानिक ज्योतिषी बहुत अधिक दूरी पर कार्य करते हैं इससे यहां यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि प्रकाश को अपने उद्गम स्थान से निरीक्षक तक पहुंचने में कुछ समय लगता है। नभ वैज्ञानिक प्रकाश की गति के कारण सृष्टि को कभी भी वर्तमान स्थिति में नहीं देख सकते हैं परन्तु उसे सदैव भूतकाल में देखते हैं जैसे सूर्य से पृथ्वी पर प्रकाश आने में 8 मिनट लगते हैं इसलिए हम सूर्य को सदैव 8 मिनट पूर्व वह जहां था वहां देखते हैं। इसी तरह अपने शक्तिशाली दूरदर्शक यन्त्र द्वारा आकाश गंगा के तारों को लाखों वर्ष पूर्व वे जहां थे वहां आज देखते हैं इस प्रकार नभ वैज्ञानिक के लिए आकाश और समय के मध्य की कड़ी (प्रकाश) का महत्व है जो उनको संयुक्त करती है। पृथ्वी पर किसी भी दूरी का माप समय निरपेक्ष नहीं है क्योंकि इसमें निरीक्षक की गति की स्थिति भी सम्मिलित होती है और इस प्रकार समय का सन्दर्भ उपस्थित होता है। आकाश और समय का यह संयुक्त होना दूसरी आधारभूत मान्यताओं का संयुक्ती करण भी बताता है। संयुक्त करने वाली यह विचारधारा सापेक्षतावाद के ढांचे की सबसे महत्वपूर्ण चारित्रिक विशेषता है। वैदिक वाङ्मय इस विचारधारा का समर्थन करती है। आकाश समय के बीच की कड़ी (प्रकाश) के अभाव में कुछ देख ही नहीं सकते। अथर्ववेद 13.2.17 में कहा गया है कि सूर्य के प्रकाश से ही सारे प्राणी देखने में समर्थ होते हैं। फिर स्वामी दयानन्द सरस्वती ऋ 1.164.19 के भावार्थ में कहते हैं कि संसार में कुछ भी निरपेक्ष नहीं है सभी कुछ सापेक्ष हैं। सापेक्षता सिद्धान्त के अनुसार किसी सलाख की लम्बाई सबसे अधिक तब होती है जब वह स्थिर होती है। उसे गति देने पर वह गति की दिशा में सिकुड़ती है। यह बात समय पर भी लागू होती है। तीव्र गति से चलती हुई घड़ी धीमी हो जाती है और समय कम बताती है। हृदय की धड़कन पर भी यह नियम लागू होता है। यदि दो जुड़वां बच्चों में से एक को बाहरी आकाश में तीव्र गति से सैर पर भेजा जावे तो वापस आने पर वह अपने भाई छोटा होगा इसका कारण उसके हृदय की धड़कन होगी।

इसी प्रकार कई प्रयोगों द्वारा यह

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

प्राकृतिक उल्लास का पर्व–बसन्त पंचमी

है ऋतुराज का आगमन जल-थल में छवि छाई है।
प्रकृति देवी नवले रंग में रंग मञ्च पर आई है।

बसन्त पंचमी का पर्व प्राकृतिक उल्लास का पर्व है। इस पर्व पर जड़ प्रकृति के अन्दर भी असीम उत्साह का संचार होता है। प्रकृति में चारों ओर नवयौवन दिखाई देता है। बसन्त ऋतु के आगमन से जहां दीन दुःखी जन को साहस मिलता है कि हमारा जीवन सकुशल रहेगा, उसके साथ ही प्रकृति में अतुलनीय शोभा का विकास होता है। समस्त भूमि पीली चादर ओढ़े अपनी मन्द सुगन्ध समीर से जन मानस को आह्लादित कर देती है। वनस्पति जगत में सर्वत्र नवीन परिवर्तन होता दिखाई देता है।

बसन्त पंचमी के पर्व का समय ऐसा आनन्द और उत्साह देने वाला होता है कि वायुमण्ड़ल मोद और मद से भर जाता है। दिशाएं कलकण्ठा कोकिला आदि विविध विहंगमों के मधुर आलाप से प्रतिध्वनित हो उठती हैं। क्या पशु, क्या पक्षी और क्या मनुष्य सबका ह्रदय आनन्द से उद्वेलित होने लगता है। मनों में नई-नई उमंगें उठने लगती हैं। भारत के अन्नदाता किसान अपने दिन रात के परिश्रम को आषाढ़ी फसल के रूप में देखकर फूले नहीं समाते हैं। उनके गेहूं और जौ के खेतों की नवाविर्भूत बालों से युक्त लहलहाती हरियाली उनकी आँखों को तरावट तथा चित्त को अपूर्व आनन्द देती है। कृषि के सब कार्य इस समय समाप्त हो जाते हैं।

संस्कृत भाषा में त्यौहारों को पर्व भी कहते हैं। पर्व का दूसरा अर्थ जोड़ होता है, जैसे हमारे शरीर में हड्डियों का जोड़ होता है। जिनके कारण शरीर सीधा होकर गति करता है। इसी प्रकार गन्ने और बाँस में भी जोड़ होते हैं। पौधों को सीधा खड़ा करने के लिए जोड़ होता है। इसी प्रकार हमारे राष्ट्रीय जीवन में यही महत्त्व पर्वों का होता है। जिस प्रकार शरीर में से हड्डियों को निकाल दें तो शरीर न रहकर केवल मांस का लोथड़ा रह जाता है, इसी प्रकार हमारे जीवन में त्यौहारों को निकाल दें तो हमारा जीवन मृत प्रायः रह जाता है।

समय-समय पर आने वाले त्यौहार जहां हमारे जीवन में आनन्द उत्साह पैदा करते हैं, वहां सामाजिक सांस्कृतिक और ऐतिहासिक स्वरूपों का दिग्दर्शन कराके हमें अच्छे मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। हमारे देश में अनेक पर्व आते हैं जिन्हें हम मिलजुल कर आनन्द और उत्साह के साथ मनाते हैं। ऐसे ही प्रेरणा और उत्साह देने वाला बसन्त पंचमी का पर्व भी है।

बसन्त पंचमी का पर्व हमें प्रेरणा देता है कि जिस प्रकार बसन्त के आने पर सम्पूर्ण प्रकृति में हलचल दिखाई देती है और उसमें परिवर्तन होता है, नव संचार होता है, चारों ओर फूल खिलने लगते हैं, उसी प्रकार हमारे मनुष्य जीवन में भी परिवर्तन होना चाहिए। हमारे जीवन में भी आनन्द और उत्साह का संचार होना चाहिए। अपनी कमियों और त्रुटियों को दूर करके उसमें सद्गुणों का संचार करना चाहिए। अगर जड़ प्रकृति ऋतुओं के अनुसार अपने अन्दर परिवर्तन कर सकती है तो हम तो चेतन प्राणी हैं। हम चेतन होकर भी अगर अपने अन्दर परिवर्तन नहीं करते, बदलाव नहीं लाते तो हमारा चेतन होने का क्या लाभ?

बसन्त पंचमी का दिन जहां ऋतु परिवर्तन की दृष्टि से अपना महत्व रखता है वहां अपने साथ एक महाबलिदानी, धर्मनिष्ठ भारतीय वीर की याद ताजा कर देता है। इस बलिदानी वीर का नाम हकीकत राय था, जिसने अपनी छोटी सी आयु में जीवन की हकीकत को समझा था, धर्म के साथ निभाया था और अपनी भारतीय परम्पराओं का मुख उज्जवल किया था। वीर हकीकत के जीवन चरित्र को पढ़ने से यह प्रेरणा मिलती है कि हमें अपने पूर्वजों के यशस्वी जीवन की प्राणपन से रक्षा करनी चाहिए। किसी में यह साहस न हो कि हमारे पूर्वजों का अपमान कर सके या हमारे धार्मिक सिद्धान्तों की खिल्ली उड़ा सके। हमारी संस्कृति और सभ्यता का उपहास न उड़ा सके। यह सब कुछ एक छोटे से बालक हकीकत राय के साथ घटित हुआ।

उसके सामने उसके देवी-देवताओं का मजाक उड़ाया गया परन्तु वीर हकीकत ने उन्हीं शब्दों में उसका प्रतिवाद किया। परिणामस्वरूप वीर हकीकत राय को मृत्युदण्ड़ की सजा का फैसला हुआ और साथ में यह शर्त रखी गई कि अगर यह मुसलमान बन जायेगा तो इसकी जान बच सकती है। परन्तु आयु की दृष्टि से वीर हकीकत भले ही छोटे थे परन्तु अपने धर्म के प्रति उत्सर्ग का ऊंचा भाव निज बलिदान द्वारा जो प्रस्तुत किया वह किसी भी स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए अत्यन्त प्रेरणा देने वाला है। वीर हकीकत को डराया गया, धमकाया गया, अपने धर्म को छोड़ने के लिए अनेक प्रकार के प्रलोभन दिए गए, धन-दौलत का लालच दिया गया,मृत्यु का भय दिखाया गया परन्तु वीर हकीकत उनके भय और प्रलोभन के जरा भी विचलित नहीं हुए। अपना धर्म परिवर्तन करके प्राणों को बचाने की कोई इच्छा प्रकट नहीं की।

धर्म पर बलिदान होने वाले ही धर्म के सच्चे प्रेमी और प्रचारक होते हैं, यह वीर हकीकत ने अपने बलिदान से सिद्ध कर दिया। 14 वर्ष की छोटी आयु होने पर भी जो भाव और श्रद्धा वीर हकीकत के अन्दर थी वह सचमुच प्रेरणादायक है। वीर हकीकत ने गीता के वचनों को सार्थक कर दिया कि-स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।। अर्थात् अपने धर्म के लिए मर मिटना भी कल्याणकारी होता है, दूसरों के धर्म को अपनाकर हम सुख और शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकते।

आज हम थोड़े से भय और प्रलोभन के वशीभूत होकर अपने धर्म को तिलांजलि दे देते हैं। बसन्त पंचमी का पर्व हमें वीर हकीकत के गुणों को अपनाने की प्रेरणा देता है। वीर हकीकत ने अपने बलिदान से हमारा मार्गदर्शन किया है कि चाहे कितने ही कष्ट सहने पड़े, कितनी मुसीबतें सहन करनी पड़े हम अपने मार्ग से, अपने कर्त्तव्य से, अपने धर्म से कभी भी मुंह न मोड़े।

इस वर्ष 30 जनवरी को बसन्त पंचमी का पर्व और वीर हकीकतराय का बलिदान दिवस है। जिस प्रकार वीर हकीकत राय को बचपन में अपने माता-पिता से धार्मिक संस्कार मिले थे, धर्म के प्रति गहरी लगन थी, छोटी सी आयु में धर्म का बोध हो गया था उसी प्रकार हमें भी अपने बच्चों में धर्म के प्रति रूचि पैदा करनी है। बच्चों को अपनी संस्कृति और सभ्यता के प्रति आकर्षित करना है। बच्चों को राष्ट्र के प्रति उनकी जिम्मेवारी का अहसास कराना है, उन्हें एक अच्छा नागरिक बनाना है। तभी हम अपने राष्ट्र की उन्नति कर सकते हैं। बसन्त पंचमी का पर्व मनाते हुए हम भी अपने अन्दर उत्साह और आनन्द का संचार करें। प्रकृति के साथ-साथ अपने जीवन में भी परिवर्तन करें। पर्वों के द्वारा हमारे अन्दर नई प्रेरणा तथा उत्साह पैदा होता है। पर्वों के बिना हमारा जीवन नीरस हो जाता है। नीरस जीवन को सरस बनाने के लिए हम सभी मिलजुल कर आनन्द और उत्साह के साथ अपने पर्वों को मनाएं। बसन्त पंचमी का पर्व भी ऐसा ही प्रेरणादायक तथा आनन्द और उत्साह को बढ़ाने वाला पर्व है। इस पर्व को मनाते हुए हम जहां प्रकृति के अनुसार अपने जीवन में परिवर्तन करें वहीं वीर हकीकत राय के गुणों को धारण करके अपनी संस्कृति, सभ्यता और धर्म की रक्षा करें।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

''हमें ईश्वर के सत्यस्वरूप की ही उपासना करनी चाहिये असत्य की नही''

ले.-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

किसी भी वस्तु या पदार्थ का स्वरूप कुछ विशिष्ट गुणों को लिये हुए होता है। उन गुणों को जानकर उसके अनुरूप उसके बारे में विचार रखना व उसका सदुपयोग करना ही उचित होता है। ईश्वर भी एक द्रव्य व पदार्थ है जिसमें अपने कुछ गुण, कर्म व स्वभाव आदि हैं। हमें ईश्वर के गुण, कर्मों व स्वभाव पर विचार करना चाहिये। ईश्वर के जो गुण, कर्म व स्वभाव हम निश्चित करें, उन्हें विद्वानों की शरण में जाकर उनका परामर्श लेकर उनकी सत्यता की पुष्टि करनी चाहिये। इसके साथ ही हमें नित्य प्रति वेद आदि प्राचीन ग्रन्थों का स्वाध्याय करना चाहिये। इन वेदादि ग्रन्थों में ईश्वर का सत्यस्वरूप उपलब्ध होता है। स्वाध्याय से मनुष्य सत्य व असत्य को जान सकता है। ऋषि दयानन्द ने बताया है कि जो पदार्थ जैसा है, जिन गुण, कर्म व स्वभाव वाला है, उसको वैसा ही मानना, उससे विपरीत न मानना ही सत्य होता है। यदि हम ऐसा नहीं करते तो यह असत्य होता है। देश व संसार में जब हम लोगों को ईश्वर की उपासना करते हुए देखते हैं तो हम पाते हैं कि ईश्वर की उपासना करने वाले लोगों को ईश्वर विषयक यथोचित ज्ञान नहीं है। उनसे प्रश्न पूछने पर वह ईश्वर विषयक किसी प्रश्न का उचित वा सत्य उत्तर नहीं दे पाते।

एक व्यक्ति गंगा नदी को माता मानता है और उससे अपनी इच्छाओं व कामनाओं सहित मोक्ष प्राप्ति की इच्छा व विश्वास रखता है। उससे यदि पूछा जाये कि आपकी जो आस्था है वह सत्य है व असत्य। वह यही कहेगा कि सत्य है। उससे यदि कहा जाये कि वह अपनी आस्था के पक्ष में कुछ तथ्य, विचार, तर्क, प्रमाण, दृष्टान्त व आप्त वचन प्रस्तुत करे तो वह मौन रहता है। इसका अर्थ है कि उस व्यक्ति ने इन बातों को परम्परागत रूप से माना तो है परन्तु उसे इस का विषय विशेष ज्ञान नहीं है। इस विषय पर जब वेद शास्त्र आदि ग्रन्थों का अध्ययन करने के बाद पक्ष व विपक्ष में विचार करते हैं तो यह तथ्य सामने आता है कि गंगा एक जल से युक्त नदी है। परमात्मा ने इसे बनाया है। यह पर्वतों पर पड़ी हुई बर्फ व वर्षा के जल से बनी है। बर्फ पिघलती रहती है तो वह जल इकट्ठा होकर एक नदी का रूप लेकर ऊंचाई से नीचे स्थानों की ओर बहता है और बंगाल में जाकर समुद्र के जल में मिल जाता है। गंगा एक नदी है और जल जड़ पदार्थ है। जड़ पदार्थ में चेतन व चैतन्यता का गुण नहीं होता। उसको सत्य व असत्य तथा सुख व दुःख की अनुभूति नहीं होती। ज्ञान केवल चेतन पदार्थ में ही रहता है। संसार में चेतन पदार्थ दो ही हैं। सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा और अनन्त संख्या में चेतन जीव जो सूक्ष्म, अल्पज्ञ, एकदेशी, ससीम, अनादि, नित्य, अमर, अविनाशी, जन्म-मरण धर्मा, कर्म-फल बन्धन में फंसे हुये, वेदज्ञान को प्राप्त कर एवं उसके अनुरूप आचरण कर जन्म-मरण से छूट कर मोक्ष को प्राप्त होने वाले हैं। जड़ पदार्थ में चेतन के ज्ञान व स्वतन्त्रतापूर्वक कर्म करने की सामर्थ्य आदि गुण नहीं होते। जल, गंगा, किसी अन्य नदी, कुवें व समुद्र आदि का सभी जड़ होता है। वह किसी मनुष्य की कामना को न तो जानता है, न सुन सकता है, न अनुभव कर सकता है और न ही पूरा कर सकता है। अतः गंगा नदी को परमात्मा ने जल को पीने तथा जल से खेतों की सिंचाई आदि करने के जिस प्रयोजन से बनाया है, उससे वही प्रयोजन सिद्ध करना चाहिये। यदि हम गंगा से सुख व मोक्ष आदि की कामना करेंगे, पापों को दूर करने व धोने की प्रार्थना करेंगे तो ऐसा होना सर्वथा असम्भव है। ऐसा व्यवहार हमें नहीं करना चाहिय। हमें गंगा आदि सभी नदियों को स्वच्छ रखते हुए उनसे यथायोग्य उपकार लेने चाहियें।

मनुष्य की सुख व मोक्ष आदि की प्रार्थना चेतनस्वरूप सर्व-शक्तिमान परमात्मा से सद्कर्मों सहित सदाचरण व उपासना करते हुए करने से वह अवश्य पूरी हो सकती हैं। इसके अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं। हमारा अपना निजी अनुभव है कि हम वेद व वैदिक साहित्य का स्वाध्याय करते हैं, तदनुसार आचरण व व्यवहार करने का प्रयास भी करते हैं, वैदिक पद्धति से ही ईश्वर की उपासना एवं अग्निहोत्र यज्ञ आदि करते हैं जिससे हमारी सभी आवश्यकतायें एवं सुख आदि हमें प्राप्त हुआ व हो रहा है। जो ऐसा नहीं करते उनको भी सुख प्राप्त होता है। उसके कारण पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि वह उन्हें उनके प्रारब्ध, पूर्व पुण्य-कर्मों सहित उनके इस जन्म के पुरुषार्थ का परिणाम है। गंगा की स्तुति, उपासना, स्नान, पूजा या किसी प्रकार की मूर्तिपूजा व अन्य मत-मतान्तरों की अवैदिक पूजा विधि से भक्ति व उपासना करने से सुख आदि का कोई लाभ नहीं होता। अतः मनुष्य को सत्य व असत्य का विचार कर ही कोई भी कार्य करना चाहिये। ऐसा करेंगे तो हमें सर्वत्र सफलता मिलेगी और नहीं करेंगे तो तात्कालिक सफलता मिलने के बाद भी उसका आधार सत्य न होने के कारण हमने अज्ञानतावश उसके लिये जो असत्य साधन अपनायें होंगे, उसका परिणाम व दण्ड ईश्वर की व्यवस्था से भोगना पड़ सकता है वा पड़ेगा।

उपासना के क्षेत्र में हमें ईश्वर के सत्यस्वरूप की ही उपासना करनी चाहिये। यदि हम बिना ईश्वर के सत्यस्वरूप को जाने उसकी उपासना करेंगे तो उपासना से होने वाले लाभों से वंचित रह सकते हैं। ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है अतः हमें ईश्वर के इसी रूप की उपासना करनी चाहिये। सच्चिदानन्द का अर्थ सत्य, चेतन और आनन्द से युक्त ईश्वर है। सत्य का विपरीत अर्थ असत्य, चेतन का विपरीत जड़ तथा आनन्द का विपरीत दुःख होता है। हममें से अधिकांश लोग ईश्वर के चेतनस्वरूप की उपासना न कर उसको जड़ रूप में मानते हैं। सभी साकार पदार्थ जड़ हैं। ईश्वर निराकार एवं सर्वव्यापक है। सर्वव्यापक पदार्थ किसी भी स्थिति में साकार नहीं हो सकता। अतः ईश्वर को निराकार एवं सर्वव्यापक रूप में ही मानना चाहिये। ऋषि दयानन्द ने ईश्वर द्वारा दिये जीवों व मनुष्यों का कल्याण करने वाले ज्ञान ''चार वेद'' के आधार पर ईश्वर का संक्षिप्त सत्यस्वरूप बताते हुए कहा है 'ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है।' ईश्वर की उपासना में प्रवृत्त होने से पूर्व अथवा उपासना करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वर के इस स्वरूप पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये कि क्या वह ईश्वर को इसी प्रकार के स्वरूप वाला मानते हैं। इसके विपरीत ईश्वर के स्वरूप व उसमें किसी अन्य गुण जो इसके स्वरूप व स्वभाव के विपरीत हैं, उन्हें ईश्वर की उपासना में सम्मिलित करेंगे तो हमारी उपासना में विकृति होगी और उससे वह लाभ प्राप्त नहीं होंगे जिन्हें प्राप्त करने के लिये हम उपासना करते हैं।

वेदाध्ययन एवं ऋषि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों के अध्ययन सहित चिन्तन-मनन व विचार करने पर हमें प्रतीत होता है कि जो लोग ईश्वर की मूर्ति की पूजा करते हैं वह उचित कार्य नहीं है। जब ईश्वर जड़ एवं रूपवान है ही नहीं, तो उसके विपरीत उसे मानना उसकी उपासना नहीं अपितु उसका एक प्रकार से अपमान करना है। इससे ईश्वर की स्तुति व उपासना आदि न होकर उसकी अवज्ञा एवं उसका जाने व अनजाने में अपमान व तिरस्कार होता है। अतः ईश्वर के सत्यस्वरूप को जानकर उसको अपने विचारों, चिन्तन, ध्यान, विवेचन, मनन, चर्चा व व्याख्यान आदि में सम्मिलित करने से ही ईश्वर की उपासना होती है व सबको करनी चाहिये। हमारे ऋषि, योगी, चिन्तक, विचारक, मनीषी आदि सभी यही कार्य करते थे वे अब भी करते हैं। हमारे सभी विद्वान वेद व ऋषियों के ग्रन्थों का स्वाध्याय करते हैं। उनका चिन्तन, मनन करने सहित उनके सत्य व असत्य की परीक्षा करते हैं। सत्य का ग्रहण व असत्य का परित्याग करते हैं और ईश्वर की स्तुति व प्रार्थना आदि वेद मन्त्रों सहित अपनी सामान्य भाषा में करत हैं। इसके लिये किसी आकार, चित्र, स्त्री व पुरुष रूप वाली मूर्ति, जल, फल, पुष्प, पत्र, धूप, अन्न व उसके बने पदार्थों, लाल, पीले वस्त्र, ढोल, नगाडे आदि की आवश्यकता नहीं

(शेष पृष्ठ 7 पर)

मृत्यु पर विजय

ले.-डॉ. रघुवीर वेदालंकार पूर्व प्रो. रामजस कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
ऊर्वारुकमिव बन्धानान्मृ-त्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।।
(यजु. 3/67)

अर्थ-हम तीनों लोकों में व्याप्त त्र्यम्बक परमेश्वर का यजन करते हैं। वह परमेश्वर उत्तम यश वाला तथा सबकी रक्षा करने वाला है। वह परमेश्वर हमें मृत्यु के बन्धन से उसी प्रकार छुडा दे, जिस प्रकार खरबूजा पकर कर अपनी डाल से छूट जाता है। वह हमें मोक्ष से पृथक् न करे।

इस मन्त्र का देवता रुद्र है। इसीलिए यास्काचार्य ने त्र्यम्बक का अर्थ रुद्र ही किया है। मृत्यु के बन्धन से छुटने के लिए यहां पर रुद्र की उपासना, भक्ति की बात कही गयी है। इस मन्त्र में मृत्यु तथा अमृत-मोक्ष दोनों का ही उल्लेख हुआ है। इसे महामृत्युञ्जय मन्त्र भी कहा जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस मन्त्र का जप करने से मृत्यु तथा उसके भय से छूटा जा सकता है। मृत्यु का भय हम सबके ऊपर सवार है। उसको ही हटाने की प्रार्थना यहां की गयी है। यहां दो बातें स्पष्ट रूप में कही गयी हैं-

1. मृत्यु तो होगी, किन्तु हम अपनी पूर्ण आयु को प्राप्त करके उसी प्रकार सहज रूप से इस शरीर को जीर्ण-शीर्ण होने पर छोड़ दें, जिस प्रकार पकने पर खरबूजा अपनी डाल से स्वयं ही अलग हो जाता है। वृद्धावस्था से पूर्व अपरिपक्व अवस्था में मृत्यु हमें अपना ग्रास न बनाए।

2. मृत्यु के पश्चात् हम इस जन्म-मरण के चक्कर से निकलकर अमृत अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करें।

दोनों ही बातें महत्वपूर्ण हैं। पूर्ण आयु प्राप्त करके सहज मृत्यु तथा उसके पश्चात् मोक्ष की प्राप्ति। इनकी प्राप्ति के लिए ही इस मन्त्र का जप तथा अनुष्ठान किया जाता है। ईश्वर की शरण में गये बिना उक्त दोनों बातों की प्राप्ति नहीं हो सकती। यजामहे का अर्थ है-संगति करते हैं, उसका ध्यान करते हैं, उसके साथ अपने आप को संयुक्त करते हैं। किसके साथ? त्र्यम्बक के साथ। प्राय: त्र्यम्बक का अर्थ तीन नेत्रों वाला किया जाता है तथा इसी आधार पर शिव जी के तीन नेत्रों की कल्पना भी की जाती है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है।

त्र्यम्बक का अर्थ है-तीनों लोकों में शब्द करने वाला। अर्थात् सर्वव्यापक। जो संसार के कण-कण में रम रहा है, उसी सर्वव्यापक परमेश्वर के साथ संगति करके हम अमृत अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। इस मन्त्र में उस परमेश्वर को सुगन्धी कहा गया है। यज्ञ भी सुगन्धी अर्थात् सुगन्ध से युक्त है। यज्ञ होते ही दूर-दूर तक सुगन्ध फैल जाती है। सुगन्ध से ही उस स्थान का पता चल जाता है, जहाँ यज्ञ हो रहा होता है। परमेश्वर का बनाया संसार ही मानो उसकी सुगन्ध है। इस सुन्दर तथा सुव्यवस्थित संसार को देखकर इसके बनाने वाले की स्मृति अवश्य आती है। इसी कारण परमेश्वर को यहां सुगन्धी कहा गया है। वह सुगन्धी परमेश्वर पुष्टिवर्धक अर्थात् सारे संसार का पालन-पोषण करने वाला भी है, हम उसकी संगति करते हैं। उसका यजन करते हों।

यह परमेश्वर क्या करेगा-मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्। परमेश्वर मुझे मृत्यु से छुड़ाकर अमृत की प्राप्ति करायेगा, इसीलिए मैं उसका यजन करता हूँ। उसकी शरण में आता हूँ। उसकी भक्ति करता हूँ।

तो आइए, चलें अमृत की ओर, किन्तु इससे पूर्व मृत्यु को जीतना होगा। मृत्यु, क्या इसे जीता जा सकता है? क्या इससे छुटकारा पाया जा सकता है? इसे जीतने के लिए ही तो राजकुमार सिद्धार्थ ने राज-पाट तथा पुत्र-पत्नी तक को भी त्याग कर जंगल में जाकर तपस्या की थी। यही सिद्धार्थ आगे महात्मा बुद्ध के नाम से विख्यात हुए। मूलशंकर को उसके चाचा तथा बहिन की मृत्यु ने इतना आन्दोलित कर दिया था कि उन्होंने भी इसके निवारण का उपाय जानने के लिए, घर-बार, सम्पत्ति सब कुछ छोड़ दिया। यही मूलशंकर बाद में ऋषि दयानन्द कहलाए तथा इच्छामृत्यु को प्राप्त किया।

प्रश्न है कि क्या सचमुच मृत्यु को जीता जा सकता है? हाँ, ऐसा सम्भव है, तथा वेद हमें मृत्यु को जीतने के उपाय बतलाते हुए कहता है -**ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत**। यहाँ मृत्यु को जीतने, उसे मार भगाने के दो उपाय बतलाये गये हैं-ब्राह्मचर्य तथा तप। इतिहास साक्षी है कि जिन्होंने भी इन उपायों का आश्रय लिया, उन्होंने मृत्यु पर विजय प्राप्त की।

प्राचीन काल में तो अनेक तपस्वी तथा अखण्ड ब्रह्मचारी भारत भूमि पर हुए, किन्तु उनका इतिहास हमारे सामने नहीं है। हाँ, हम इतना अवश्य सुनते हैं कि अमुक ऋषि, तपस्वी कई सौ वर्षों तक जीवित रहा, इत्यादि। तीन अखण्ड ब्रह्मचारियों की जीवन गाथा हमारे सामने हैं, जो सर्वथा शुद्ध, निष्कलङ्क ब्रह्मचारी थे। त्रेता युग में पवनपुत्र हनुमान्, द्वापर में भीष्म पितामह तथा कलियुग में महर्षि दयानन्द। तीनों ही अखण्ड, ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी थे। हनुमान् जी की मृत्यु के विषय में हम अच्छी तरह जानते हैं। भीष्म पितामह ने शर-शैय्या पर छह महीने रहने के बाद उत्तरायण आने पर स्वेच्छा से शरीर छोड़ा था, ऐसा सुविदित है। यही कथा महर्षि दयानन्द की भी है। जगन्नाथ द्वारा भोजन में विष दिये जाने पर कई दिन तक असहाय पीड़ा को सहन करते हुए भी महर्षि ने शरीर त्याग नहीं किया। दीपावली के पवित्र दिन, तिथि-नक्षत्र आदि पूछकर, हजामत बनवाकर, पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति की तरह ध्यान मग्न होकर, ईश्वर का स्मरण करते हुए उन्होंने 'ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो, तूने अच्छी लीला की' कहकर इच्छा से ही शरीर त्याग किया था।

यही है, मृत्यु को जीतना। मृत्यु तो आयेगी, अवश्य आयेगी। संसार में उत्पन्न होने वाला कोई भी भौतिक पदार्थ मृत्यु से बच नहीं सकता। जो उत्पन्न हुआ है, वह नष्ट अवश्य ही होगा। यही सृष्टि का धर्म है। यही परमेश्वर की व्यवस्था है। कोई भी इसका अतिक्रमण नहीं कर सकता। मृत्यु को जीतने का यही अर्थ है कि मृत्यु मुझे कभी भी आकर न दबोच ले, अपितु मैं जब चाहूं, अपनी इच्छानुसार शरीर को छोड़ूं। ऊपर के दोनों उदाहरण इसी कोटि के हैं।

सब लोग भीष्म तथा दयानन्द के समान ब्रह्मचारी तथा तपस्वी नहीं बन सकते। प्रश्न है कि क्या वे भी मृत्यु को जीत सकते हैं? क्या वे भी अमृतत्व की प्राप्ति कर सकते हैं? हां, अवश्य। इतना तो नहीं होगा कि वे इच्छानुसार मृत्यु को जब तक चाहें, तब तक दूर रोके रहें तथा इच्छा होने पर ही मृत्यु को प्राप्त करें। इतना अवश्य हो सकता है कि मृत्यु इनके लिए कष्टदायी न हो। ये मृत्यु से भयभीत न हों।

मृत्यु से भी बढ़कर मृत्युभय प्राणी-मात्र के ऊपर सवार हैं। विद्वान्-मूर्ख, राजा-रंक, धनी-निर्धन, चींटी से लेकर हाथी तक सभी प्राणी इस मृत्युभय से ग्रस्त हैं, तथा चाहते हैं कि उनकी मृत्यु न हो, किन्तु मृत्यु सभी की होती है। पहले से होती आयी है, तथा आगे भी होती रहेगी। मृत्यु के भय से हम नहीं बच सकते, किन्तु यदि हम मृत्युभय से ऊपर उठ सकें, तो यह भी हमारे लिए बहुत बड़ी उपलब्धि होगी।

मृत्यु आए, कभी भी आए, हम उससे डरें नहीं। हम उसे शत्रु नहीं, अपितु मित्र मानें, वह हमें खोजती हुयी हमारे पास न आए, अपितु हम स्वयं ही मृत्यु से मिलने उसके द्वार पर पहुंच जाएं, ठीक उसी तरह जैसे कि प्रसन्नतापूर्वक एक मित्र के घर जाते हैं, उससे गले मिलते हैं, तथा आनन्दित होते हैं। मृत्यु से भी हम ऐसा ही सम्बन्ध बनाएं, यही है मृत्युञ्जय, जिसका अर्थ है-मृत्यु को जीतना। संसार में ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे, जिन्होंने हंसते-हसंते, देखते-देखते मृत्यु को स्वीकारा है, उसे गले लगाया है। एथेंस के प्रसिद्ध दार्शनिक सन्त सुकरात विष का प्याला लेकर स्वयं पी रहे हैं। उनका एक-एक अंग निर्जीव होता जा रहा है, तथा सुकरात कहते जा रहे हैं-अब मेरे पांव मर रहे हैं, अब मेरा धड़ मर रहा है, अब मेरे हाथ मर रहे हैं। सुकरात यह नहीं कहते कि मैं मर रहा हूँ, क्योंकि वे जानते हैं कि सुकरात का आत्मा अजर है, अमर है। वह कभी भी मर नहीं सकता। मरेगा तो केवल यह शरीर। सुकरात जैसे सन्त पुरुषों की मृत्यु क्या बिगाड़ेगी, इन्होंने मृत्यु के भय को सर्वथा समाप्त कर दिया है। ऐसे व्यक्ति भी मृत्युञ्जयी कहलाते हैं। **(क्रमश:)**

हमें ऋत सत्य के प्रति आत्म समर्पण करना चाहिए

ले.-पं. उम्मेद सिंह विशारद वैदिक प्रचारक उत्तराखण्ड

त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि, ऋतं वदिष्यामि, सत्यं वदिष्यामि, तन्मामवतु तदव-क्तारमवतु। अवतु माम। अवतु वक्तारम।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का लेखन उक्त तैतिरीय आरण्यक के वचन से प्रारम्भ किया है। इसका अर्थ यह है कि मैं जो बात जैसी होगी वैसी ही कहूँगा, बिल्कुल सत्य कहूँगा, परन्तु फिर भी ईश्वर मेरी रक्षा करे। जो बात जैसी है वैसे ही कोई कहेगा तो स्वयं सत्य उसकी रक्षा करेगा फिर ईश्वर को बीच में लाने की क्या आवश्यकता है। इसमें गूढ़ रहस्य छिपा है? असत्य बोलने वाला कहे भगवान मेरी रक्षा करो समझ आता है, किन्तु सत्य बोलने वाला क्यों कहे।

मानव जो देखता सुनता है वह उसके ज्ञानार्जन के आधार पर निर्णय करता है वह उसके लिये तो सत्य हो सकता है, किन्तु क्या ईश्वरीय विधान में भी वह सत्य है मनुष्य अपने संसारिक ज्ञान को केन्द्रित होकर कहेगा। किन्तु सत्य की परख विशाल सृष्टि के दृष्टिकोण से ही हो सकेगी।

इसलिए श्रुति ने कहा कि मैं अपने से सत्य कहता हूँ और यथार्थ कहता हूँ, किन्तु ईश्वर की दृष्टि में असत्य हो सकता है। ऐसी परिस्थिति में मैं अपने को ईश्वर के प्रति समर्पण करता हूँ, क्योंकि मेरी दृष्टि मुझसे ही बंधी है और उसकी दृष्टि सबसे बंधी है।

ऋत सत्य और सत्य का रहस्य

ईश्वर ऋत सत्य है, और भूत भविष्य-वर्तमान का व्यवहार ऋत सत्य में नहीं होता और वह काल की चपेट में नहीं आता है। अत: सत्य शब्द मनुष्यों में ही सम्बन्ध रखता है, ईश्वर में नहीं और सत्य सदैव ऋत सत्य के अपेक्षा असत्य ही होता है। संसार के सारे व्यवहार सत्य के आधार पर अवश्य होता है। परन्तु ईश्वर रूपी ऋत सत्य में संयोग व वियोग नहीं होता है। सदैव संयोग ही संयोग रहता है। अत: वास्तविक सत्य तो ऋत सत्य है। असत्य के आश्रित असुर, सत्य के आश्रित मनुष्य और ऋत सत्य के आश्रित देवता रहते हैं।

आत्म समर्पण के लिये तीव्र इच्छा शक्ति व समर्पण के प्रकार

सर्वप्रथम सत्य की बांह पकड़ने के लिये तीव्र इच्छा शक्ति व पुरूषार्थ का होना अनिवार्य है किन्तु यदि बुरा आदमी बुरे काम के फल से बचने की ईश्वर से प्रार्थना करे, तो ठीक-किन्तु यहाँ तो कहा गया है कि भले ही मैंने सत्कर्म किया हो, किन्तु हो सकता है ईश्वर की दृष्टि में वो असत्य हो, तभी प्रार्थना की गयी कि मैं कर्म करके आपकी शरण में आता हूँ, आपके चरणों में अपने को समर्पित करता हूँ। क्योंकि मैं कर्म करने में स्वतन्त्र हूँ और फल भोगने में परतन्त्र के लिये आपके आधीन हूँ।

आइए आत्म समर्पण के प्रकारों पर विचार करें।

1. मनुष्य के अन्दर ऋत सत्य की ओर चलने की तीव्र इच्छा शक्ति होनी अनिवार्य है।

2. उससे भी बड़ी इच्छाशक्ति ईश्वरीय वाणी वैदिक धर्म, संस्कार, संस्कृति, सभ्यता को अपनाना है।

3. उससे भी बड़ी इच्छाशक्ति, नियमित, सन्ध्या, यज्ञ आर्षग्रन्थों का स्वध्याय व आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संगों में सपरिवार जाना है।

4. उससे भी बड़ी इच्छाशक्ति, चाहे वह सदस्य हो, पदाधिकारी हो, या प्रचारक हो उसको समर्पित भाव व नि:स्वार्थ भाव से अपने मिशन की सेवा करना है।

5. उससे भी बड़ी इच्छाशक्ति यह है: सत्य के प्रचार के लिये जिन महापुरूषों ने अपना जीवन बलिदान किये है, उनके जीवन चरित्र को पढ़कर प्रेरणा लेना है और उनके सृजन कार्य को आगे बढ़ाना है।

6. उससे भी बड़ी इच्छाशक्ति है कि ईश्वरीय वाणी वैदिक धर्म के लिए सत्संग भवन व यज्ञशाला का निर्माण कराना है।

7. उससे भी बड़ी इच्छाशक्ति है कि वैदिक धर्म के लिए चार दीवारों से बाहर निकलकर स्थान-स्थान पर धर्मज्ञान जनता को देना है।

8. और सबसे बड़ी इच्छाशक्ति व आत्मा समर्पण वह है कि ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्म समर्पण करके ऋत सत्य के लिये अपने प्राणों तक को भी बलिदान करना है।

यदि उक्त आत्म समर्पण की क्रियात्मक भावनाऐं हमारे जीवन में आ जाए तो हमारा जीवन सफल हो जायेगा। सम्पूर्ण संसार के मनुष्य सत्य की ओर टकटकी लगाये है किन्तु अपने-अपने मतों के पूर्वाग्रहों से आसक्त हो रहे है। केवल आर्य समाज ही सम्पूर्ण मानव को ऋत सत्य की ओर ले जा सकता है।

प्रभु के प्रति आत्मसर्पण करने वाला निश्चिन्त हो जाता है।

आत्म समर्पण जीवन का नियम व सिद्धान्त है। हर व्यक्ति एक दूसरे की अपेक्षा छोटा है, एक दूसरे का सहारा लेना पड़ता है। इसलिए अपने पुरूषार्थ से कर्म करते रहें, और सत्य की डोर को न छोड़े। पुन: अपना सारा बोझ ईश्वर के ऊपर छोड़ने से ईश्वर सारा बोझ ले लेते है। कवि ने ठीक कहा है।

जब दांत न थे दूध दियो, जब दूध दियो तब अन्न न दे हैं।

जल में थल में पशु पक्षिन्न की जो सुध लेत सो तो कोहू लै हैं।..

आत्म समर्पण का केवल एक ही उपाय है कि कुछ भी हम करें, उसको सपर्पित होकर करें। और अपने को बीच में से निकाल देवें। तब सारा कार्य करते हुए भी चिन्ता बीच से निकल जायेगी। प्रत्येक अन्ध विश्वास, अन्ध ऋत सत्य से दूर ले जाती है।

आत्म समर्पण केवल आस्तिक ही कर सकता है।

ऋत-सत्य पथ गामी, सत्यवादी, पुरूषार्थी व्यक्ति के आत्मा में सदैव उत्साह बना रहता है और उसकी इच्छा मजबूत रहती है, उसका ईश्वर पर अटूट विश्वास होता है और वह प्रत्येक कृत्य को ईश्वर के प्रति आत्म समर्पण करके करता है। जिन महापुरूषों ने सत्य मार्ग पर चल कर संसार को सत्य राह दिखाई है उनका प्रत्येक कृत्य ईश्वर के प्रति आत्म समर्पण था।

मैं को मिटा देना ही आत्म समर्पण है।

जब तक मानव के अन्दर ''अहंकार'' मैं हूँ का भाव बना रहता है, और प्रत्येक सफलता का श्रेय अपने को देता है, और संसार को अपना है समझता रहता है, तब तक ईश्वर के प्रति आत्म समर्पण की भावना कभी उदय नहीं होगी। प्रत्येक अणु व प्रत्येक पानी की बूंद जब सोचते है कि हम भी कुछ हैं तब उनका मूल्य कुछ नहीं है जब अणु अपने को विशाल पृथ्वी का हिस्सा बनाता है और पानी की बूँद समुद्र में जा डूबती है, तभी वह विशाल पृथ्वी व समुद्र का हिस्सा बन जाते है। इसी प्रकार दिये की लौ जब तक दिये के साथ बनी रहती है तो वह छोटी सी बत्ती का प्रकाश कहलाती है किन्तु जब-वह सूर्य से मिल जाती है तो अखिल ब्रह्माण्ड को प्रकाश देने लगती है। इसी प्रकार आत्मा जब परमात्मा के प्रति अपने को समर्पित कर देता है तब कह उठता है, हे ईश्वर यह मेरी इच्छा नहीं तेरी इच्छा हैं। तब वह आत्मा ईश्वर के प्रेम में उसी की गोद में जा पहुंचता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने ऋत सत्य और सत्य का अर्थ संसार को बताया और आर्य समाज की स्थापना करके सदैव के लिये ऋत ज्ञान ज्योति जला गये।

योग-ध्यान, साधना शिविर

जम्मू कश्मीर की सुरम्य एवं मनोरम पहाड़ियों में स्थित आनन्दधाम आश्रम उधमपुर, जम्मू, कश्मीर में आश्रम के मुख्य संरक्षक एवं निदेशक पूज्य महात्मा चैतन्यस्वामी जी की अध्यक्षता एवं पूज्य मां सत्यप्रियायतिजी के सान्निध्य में दिनांक 26 अप्रैल से 3 मई-2020 तक नि:शुल्क योग-ध्यान-साधना शिविर का आयोजन किया गया है। जिसमें अनुभवी आचार्यों एवं महात्माओं द्वारा उपासना, प्राणायाम, योगासन आदि का क्रियात्मक अभ्यास कराया जाएगा। इस अवसर पर पूज्य चैतन्यस्वामी जी के ब्रह्मत्व में प्रतिवर्ष की भान्ति सामवेद पारायण-यज्ञ का आयोजन भी किया गया है। उपनिषद् एवं योग-दर्शन पर मुख्यत: चर्चाएं होंगी तथा शिविर में साधक अपनी शंकाओं का समाधान भी कर सकेंगे। आश्रम में पूज्य स्वामी जी के सान्निध्य में पहले लगाए गए शिविरों में शिविरार्थियों के बहुत अच्छे अनुभव रहे हैं इसलिए साधकों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है अत: इच्छुक साधक अपना स्थान आरक्षित करने के लिए फोन नं. 09419107788 व 07006647800 पर तुरन्त समपर्क करें।

-भारतभूषण आनन्द, प्रधान, आश्रम ट्रस्ट

पृष्ठ 2 का शेष-वेद एवं विज्ञान में...

सिद्ध हो गया है कि आणविक कणों की आयु उनकी गति पर निर्भर है। कण की गति बढ़ने पर वह बढ़ जाती है। यदि कण की गति प्रकाश की गति की 80 प्रतिशत हो जावे तो उसकी आयु 1.7 गुणा बढ़ जावेगी तथा प्रकाश की गति का 90 प्रतिशत हो जावे तो वह 7 गुणा बढ़ जावेगी। ये सापेक्षता से प्रभाव हमें विचित्र दिखाई देते हैं इसका कारण यह है कि हम अपनी इन्द्रियों चतुर्विमीय आकाश-समय संसार को अनुभव नहीं कर सकते हैं हम केवल त्रिविमीय आकृतियों को ही समझ सकते हैं। परन्तु योगी उसे समझ लेते हैं, 'एकाएक पविर्तन जो कि दृष्टि को एक प्रकार से चतुर्विमीय स्थिति को बता देता है।' वास्तव में पूर्वीय रहस्यवाद में आकाश-समय का सहज ज्ञान हैं।

आइन्सटीन ने सन् 1915 में सापेक्षता का सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत कर दिया। उसने यह क्रान्तिकारी सलाह दी कि गुरूत्वाकर्षण बल दूसरे बलों की तरह कोई बल नहीं है परन्तु यह इस सत्यता का प्रमाण है कि आकाश-समय चौरस नहीं है। यह तो उसमें जो मात्रा और ऊर्जा है उसका वक्र या घुमावदार विभाजन है। वेद भी आकाश-समय को चौरस नहीं मानता है। वहां तो सृष्टि को ब्रह्माण्ड नाम से भी संबोधित किया जाता है। यह विज्ञान के अनुकूल है। सापेक्षता सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी जैसे बड़े ग्रहों को बल के द्वारा वक्र पथ पर भ्रमण नहीं कराया जा सकता है इसके बजाय वह वक्र आकाश में एक सीधे रास्ते पर चलने लगती है जिसे Geodesic कहते हैं। चतुर्विमीय आकाश-समय निरन्तरता में पदार्थ सदैव सीधी रेखा में चलेगा परन्तु त्रिविमीय आकाश में वह हमें घुमावदार रास्ते पर चलता दिखाई देगा।

सामान्यतया हम समझते हैं कि प्रकाश सीधी रेखा में चलता है यह भी असत्य है। प्रकाश भी घुमावदार आकाश में वक्र होकर ही चलता है। साथ ही यदि उसके मार्ग में सूर्य जैसा कोई बड़ा आकाशीय पिण्ड आ जावे तो वह तनिक सा उसकी ओर मुड़ जाता है इस कारण वह जिस तारे से आया है उसे वहां नहीं बता पाता जहां हमें इस समय दिखाई देना चाहिए। सापेक्षता सिद्धान्त की एक दूसरी भविष्यवाणी यह है कि एक भारी पदार्थ के पास समय की गति धीमी हो जाती है इसका कारण यह है कि प्रकाश ऊर्जा और उसकी तीव्रता में एक सम्बन्ध होता है। ऊर्जा जितनी अधिक होगी तीव्रता भी उतनी अधिक होगी। चूंकि प्रकाश पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण क्षेत्र में ऊपर की तरफ चलता है इससे वह ऊर्जा खोने लगता है इसलिए इसकी तीव्रता कम होने लगती है तब ऊपर के किसी भी व्यक्ति को ऐसा लगेगा मानो नीचे प्रत्येक घटना के घटने में अधिक समय लग रहा है। सन् 1962 में इस भविष्यवाणी पर प्रयोग किया गया। पानी की टंकी के ऊपरी सिरे पर तथा पेंदे पर दो बहुत सही समय बताने वाली घड़िया रखी गई। पाया गया कि पेंदे पर की घड़ी जो पृथ्वी के अधिक निकट थी वह धीमी चल रही थी। ये सापेक्षता के सामान्य सिद्धान्त के अनुरूप था। इस प्रकार सापेक्षता के सिद्धान्त से निश्चित समय की धारणा का अन्त हो गया। मान लो दो जुड़वां बालक है उनमें से एक पहाड़ पर जाकर रहने लगता है जबकि दूसरा बालक समुद्र की सतह पर रहता है। यदि वे बालक पांच वर्ष बाद मिले तो पहला बालक दूसरे बालक से बड़ा दिखाई देगा।

सापेक्षता के सिद्धान्त में किसी पूर्ण निश्चित समय की मान्यता नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति के अपने-अपने समय का माप अलग होता है और वह इस बात पर निर्भर करता है कि-वह कहां पर रहता है और कैसे गति करता है। सन् 1915 से पूर्व आकाश एवं समय मजबूती से जमा हुआ क्षेत्र समझा जाता था जिसमें घटना घटती थी परन्तु उनमें जो कुछ होता था उससे वह प्रभावित नहीं माना जाता था। परन्तु अब सापेक्षता के सामान्य सिद्धान्त में स्थिति नितान्त भिन्न है, अब आकाश एवं समय गतिशील राशियां हैं। जब कोई पदार्थ गति करता है अथवा बल लगाता है तब आकाश-समय की निरन्तरता पर प्रभाव पड़ता है। वह विश्व को केवल प्रभावित हीं नहीं करती वरन् विश्व में जो घटना घटती है उससे प्रभावित भी होती है। सापेक्षता के सामान्य सिद्धान्त में आकाश-समय निरन्तरता के विषय में सृष्टि की सीमा से हटकर बात करना भी असम्भव है। वैदिक वाङ्मय में भी यह माना जाता है कि हम आकाश समय में जो भी बात करते हैं वह सृष्टि की सीमा में ही होती है। आकाश समय निरन्तरता की इस नवीन विचारधारा ने हमारे सृष्टि सम्बन्धी विचार में क्रान्ति ला दी है। अपरिवर्तनशील सृष्टि का पुराना विचार जो अस्तित्व में था और अस्तित्व में रहता उसका स्थान हमेशा के लिए गतिशील फैलने वाली सृष्टि की विचारधारा ने ले लिया है। वेद में यह विचारधारा पूर्व से ही है ऋ 5.73.3 में कहा गया है कि जैसे रथ के पहिये घूमते हैं वैसे दिन रात सम्बन्धी चक्र घूमता है। यह परिवर्तनशील प्रकृति के विषय में ही तो कहा गया है। अथर्व. 19.53.3 में भी प्रकृति को निरन्तर परिवर्तनशील बताया है। ऋग्वेद 9.22.4 में बताया गया है कि सृष्टि के फैलते रहने के कारण कई नक्षत्र मण्डलों का प्रकाश लगातार चलते हुए भी अब तक पृथ्वी पर नहीं पहुंचा है। इस प्रकार हमनें देख लिया है कि आकाश निरन्तरता के विचार वेद एवं विज्ञान में समानता बता रहे हैं।

पृष्ठ 4 का शेष-''हमें ईश्वर के सत्यस्वरूप की...

होती। ईश्वर सर्वान्तर्यामी होने से हमारी आत्माओं के भीतर भी विद्यमान है। हम जो सोच विचार करते व ईश्वर की मौन होकर उपासना करते हुए मन में विचार व भाव उत्पन्न करते हैं, ईश्वर उन सभी को जान लेता है। ऐसा अधिक से अधिक समय तक करने से यही ईश्वर की भक्ति, स्तुति, प्रार्थना व उपासना होती है। यही ईश्वर की सत्य उपासना है। ऐसा करने से मनुष्य को ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना के फल प्राप्त होते हैं। स्तुति प्रार्थना व उपासना के फल क्या होते हैं इस पर भी महर्षि दयानन्द के कुछ विचार हम पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं।

ऋषि लिखते हैं कि ईश्वर की स्तुति करने से ईश्वर से प्रीति अर्थात् उससे प्रेम व उसमें श्रद्धा होती है। स्तुति करते हुए ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव का चिन्तन, मनन व वाचन करने से अपने गुण, कर्म व स्वभाव सुधरते हैं। ईश्वर की प्रार्थना करने से मनुष्य का अभिमान दूर होकर वह निरभिमानता का गुण ग्रहण करता है।

प्रार्थना करने से उपासक व भक्त में उत्साह और ईश्वर की सहायता व सहयोग मिलता है। ईश्वर की उपासना से परब्रह्म परमात्मा से मेल, मित्रता, निकटता, जीव का हित व कल्याण, उसको आरोग्य, बल, शक्ति व धन-सम्पति की प्राप्ति होती है। उपासना का सबसे बड़ा लाभ जो अन्य किसी प्रकार से व किसी विधि से नहीं होता वह है ''ईश्वर का साक्षात्कार।'' ईश्वर का साक्षात व प्रत्यक्ष ज्ञान सहित ईश्वर की अनुभूति तथा उसके आनन्द की प्राप्ति ईश्वर का साक्षात्कार होने पर ही पूर्णतया होती है। इन सब लाभों की प्राप्ति के लिये मनुष्य को ईश्वर के सत्य व यथार्थ स्वरूप की ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना वैदिक विधि 'सन्ध्योपासना' जिसमें ध्यान व समाधि आदि अवस्थायें सम्मिलित हैं, करनी चाहिये। ईश्वर की सत्यस्वरूप की उपासना से जो लाभ प्राप्त होते हैं वह किसी मत-मतान्तर की विधि व वेद व योग से इतर विधियों से उपासना व भक्ति करने पर प्राप्त नहीं होते। जब ईश्वर एक है, जीवात्मा का स्वरूप व उनके गुण, कर्म व स्वभावों में भी अधिकांशत: समानता है, तो उन सबकी उपासना विधि भी एक ही होनी चाहिये। मनुष्य को सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना चाहिये। यह कार्य वेदाध्ययन एवं सत्यार्थप्रकाश आदि के अध्ययन व स्वाध्याय से ही हो सकता है। सबको इन ग्रन्थों का अध्ययन व स्वाध्याय करना चाहिये।

ईश्वर सब मनुष्यों को सदबुद्धि दे और सबका कल्याण करें। उन्हें असत पथ से हटा कर सतपथ पर चलने की प्रेरणा करें। असत पथ और देश व समाज के विपरीत स्वार्थ के पथ पर चलने वालों और देश के हितों को हानि पहुंचानें वालों को सत्यप्रेरणा वा दण्ड प्रदान करें जिससे वैदिक धर्म एवं संस्कृति सुरक्षित रह सकें। सभी वैदिक धर्मी एवं भारत माता, राम, कृष्ण, शंकर व दयानन्द जी को मानने वाले संगठित हों और वैदिक धर्म की रक्षा के लिये संकल्पवान हों, यह हमारी ईश्वर से प्रार्थना है।

आर्य समाज वेद मन्दिर भार्गव नगर जालन्धर में नेत्र चिकित्सा शिविर लगाया गया

आर्य समाज वेद मन्दिर भार्गव नगर जालन्धर में दिनांक 17 जनवरी 2020 को ऑकुलस आई अस्पताल जालन्धर की ओर से आँखों के शिविर का आयोजन किया गया। इस अवसर पर 200 से अधिक लाभार्थियों ने अपनी आँखों का चैकअप करवाया। इस शिविर में लाभार्थियों को मुफ्त में दवाईयां भी दी गई और कई लोगों को डॉक्टर की सलाह से ऑपरेशन भी किये गए।

इस अवसर पर आर्य समाज के प्रधान श्री कमल किशोर जी ने कहा कि जरूरतमन्दों की सहायता करना भी पुण्य का कार्य है। आर्य समाज के छठे नियम में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने लिखा है कि संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है। उन्होंने कहा कि आर्य समाज कोई मत, पन्थ या या सम्प्रदाय नहीं है। आर्य समाज समाज के हर वर्ग के लिए कार्य करता है। जात-पात, छूआ-छूत, आदि के भेदभाव से ऊपर उठकर समाज की सेवा करना आर्य समाज का लक्ष्य है। आर्य समाज **सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः तथा वसुधैव कुटुम्बकम्** की भावना के अनुसार समाज की भलाई के लिये कार्य करता है। इसी उद्देश्य के पूर्ति के लिए यज्ञ आदि धार्मिक आयोजनों के साथ-साथ मानवता के कल्याण हेतु इस प्रकार के निःशुल्क नेत्र चिकित्सा शिविर का आयोजन किया गया है। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के मन्त्री श्री सुदेश कुमार जी ने कहा कि आर्य समाज भार्गव नगर में समाज को जागरूक करने के लिए समय-समय पर बाहर से विद्वानों को बुलाया जाता है। विद्वान आकर लोगों का मार्गदर्शन करते हैं और समाज की सेवा के लिए लोगों को प्रेरणा देते हैं। जरूरतमन्दों की सेवा करना भी पुण्य का कार्य है। निस्वार्थ भावना से किये गए सभी कार्य यज्ञ की श्रेणी में आते है। शास्त्रों में परोपकार के सभी कार्यों को यज्ञ की श्रेणी में रखा गया है। इसीलिए आर्य समाज वेद मन्दिर भार्गव नगर जालन्धर में इस निःशुल्क नेत्र चिकित्सा शिविर का आयोजन किया गया है। आगे भी समय-समय पर इस प्रकार के आयोजन किये जाते रहेंगे जिससे जरूरतमन्द लोग लाभ उठा सके। उन्होंने इस शिविर में सहयोग देने वाले ऑकुलस आई. अस्पताल जालन्धर से आये हुए सभी डॉक्टरों तथा स्टॉफ की टीम का धन्यवाद किया। आर्य समाज के सभी कार्यकर्ताओं का भी धन्यवाद किया। इस कार्यक्रम को सफल बनाने में पं. मनोहर लाल जी आर्य, श्री कमल किशोर जी, श्री रमेश लाल, श्री बिशम्बर कुमार, श्री रवि गोत्रा, श्री जगदीश भगत आदि सभी ने अपना सहयोग दिया।

सुदेश कुमार मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा

आर्य समाज वेद मन्दिर भार्गव नगर जालन्धर में आँखों के शिविर का आयोजन किया गया। इस अवसर पर आँखों का चैकअप करते हुए डॉक्टर तथा उनके पीछे खड़े आर्य समाज के सभी अधिकारी गण तथा चित्र दो में शिविर में भाग लेने आये लाभार्थी।

वेदवाणी

परमात्मा महान्-से-महान् और सूक्ष्म-से-सूक्ष्म

उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञः उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता।
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः।।

-अथर्व० ४।१६।३

ऋषिः-ब्रह्मा।। देवता-वरुणः।। छन्दः-त्रिष्टुप्।।

विनय-इस सब संसार का एकमात्र राजा वरुण है, पापनिवारक परम श्रेष्ठ परमेश्वर है। उसके सिवा अन्य कोई इस विश्व में प्रभु (सर्वसमर्थ शासक) नहीं है। अन्य किसी दूसरे का आधिपत्य, शासन इस संसार पर नहीं चल रहा है। उसके सिवा और कोई संसार पर वास्तविक शासन कर भी नहीं सकता, क्योंकि वही ऐसा अद्‌भुत परिपूर्ण है कि वह महान् से भी महान् होता हुआ सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। हमारी बुद्धि चाहे ऐसे अलखस्वरूप को न मान सके, परन्तु वरुण ईश्वर का स्वरूप ऐसा ही है। वह महान् तो इतना है कि यह विस्तृत विशाल भूमि ही नहीं, किन्तु इससे भी लाखों गुना बड़ा द्युलोक भी उस वरुण राजा के हाथ में है। यह बड़ा भारी स्थूल दृश्य जगत् ही नहीं, किन्तु इसकी अपेक्षा बहुत बड़ा जो प्रकाशमय (मनोमय, विज्ञानमय आदि सूक्ष्म) संसार है, वह भी सर्वथा वरुण राजा के आधिपत्य में ही है। इस भूलोक को तो हम कुछ जानते भी हैं, परन्तु वरुण राजा के अनन्त साम्राज्य के उस प्रकाशमय बड़े भारी विभाग को हम अभी नाम-मात्र ही समझते हैं और वह द्युलोक भी इतना विलक्षण है कि वह 'दूरे अन्ता' है, वह दूर भी है और समीप भी है। आधिभौतिक रूप से वह दूर होता हुआ भी आध्यात्मिक रूप से वही हमारे अन्दर विद्यमान है।

आध्यात्मिक रूप से 'द्यौ' का अधिष्ठाता होता हुआ वह वरुण हमारे अन्दर भी सूक्ष्म-से-सूक्ष्म होकर घुसा हुआ है, अर्थात् जहाँ वह वरुण गहराई में अनन्त है वहाँ वह विस्तार में भी अनन्त है। एवं, संसार के ये दो प्रसिद्ध बड़े भारी समुद्र-एक पार्थिव समुद्र, भूमि का तीन-पंचमांश भाग जलराशिमय पारावार तथा दूसरा इससे भी बहुत बड़ा अन्तरिक्ष समुद्र, जलवाष्पमय पारावार-ये दोनों समुद्र उस वरुण की कोख के समान हैं, परन्तु वरुणदेव आकार में जहाँ इतने विशाल हैं, इतने विराट् शरीर वाले हैं कि ये बड़े जल-समुद्र उनकी कोख में रहने वाले तनिक-से पानी के समान हैं, तो साथ ही वे इतने सूक्ष्म भी हैं कि इतने विराट् शरीरधारी होकर भी इस जल के एक कण में (एक बिन्दु में) भी छिपे पड़े हैं, समाये हुए हैं, व्याप्त हैं।

वरुण राजा ऐसे हैं। अहो! वरुण प्रभु के इस महान्-से-महान् होने के साथ ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म होने के स्वरूप की भी यदि हम उपासना करें, विस्तार के साथ गहाई में भी बढ़े हुए होने का हम यत्न करें, तो इस साधन से भी हम इतने शक्तिशाली हो जाएँ और इतने सम हो जाएँ कि हमारे सब पाप स्वयमेव निवारण हो जाएँ, हमसे पापाचरण होना अस्वाभाविक हो जाए।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित। सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**